

## श्री महाराज जी द्वारा दिये गये उपदेश

श्री महाराज जी उपदेश भी देते ही थे। परंतु श्री महाराज जी के उपदेशों का कोई निश्चित समय तथा स्थान नहीं था। जहाँ भी, जिस समय भी श्री महाराज जी उपदेश प्रारंभ करते थे, उसी समय और उसी स्थान पर सभी भक्त लोग एकत्रित हो जाते थे और घंटों उपदेशों का आनंद लेते थे। परंतु आश्चर्य इस बात का है कि उन भक्तों का कोई भी दैनिक कार्य इस समय के अभाव से प्रभावित नहीं होता था। इस बात का सत्यापन उस समय आश्रम में रहने वाले बहुत से भक्तों ने किया है।

## स्तुति

हे परमेश्वर मैं तेरा हूँ, तेरी शरण में हूँ और तुझे नमस्कार करता हूँ और तेरी ही सहायता चाहता हूँ। मेरे विभु मुझे अंतर्दामी रूप से प्रेरणा करो कि मैं तेरी इच्छा के विरुद्ध एक पग चलने का भी साहस न करूँ, मैं यही कहता रहूँ कि मेरी इच्छा कुछ नहीं तेरी इच्छा पूर्ण है, तेरे नाम के साथ कहता हूँ कि बाहर के पट बंद कर अंदर के पट खोल।

## सत्य

राम नाम सत्य है, सत्य बोलो गत्य है। अजगर ने समझा कृष्ण को खाही लूँगा और पचा जाऊँगा पर पेट के अंदर चली कटारियों से खंड-खंड होकर आतिशबाजी के अनार की तरह अजगर उड़ गया और कृष्ण वैसे के वैसे ही शेष रहा। क्या तुम इस सत्य रूप कानून को खा सकते हो, दबा सकते हो, छिपा सकते हो? इस सत्य को किसी का लिहाज नहीं और तो और खुद कृष्ण के कुल वाले जब सत्य को हँसी मैं उड़ाने लगे और अपनी तरफ से इसे रेत में रगड़-रगड़ कर मिला भी गये, यह सत्य मटिया मेट होकर भी फिर उगा और क्या कृष्ण और क्या यादव, सबके सब को हड़प कर गया, द्वारिका पर पानी फिर गया।

अरे प्यारे! विषयों के वश रहना तो पराधीनता में मरना है। तुम सत्य रूप हो। अपने असली सुदर्शन चक्र को देखो। तुम्हारे भय से सूर्य काँपता है। पवन चलती है। समुद्र उछलता है। निर्मोह निरंकार हुए सत्य आत्म ज्योति शरीर में इस प्रकार फैलती है जैसे फनूस में से प्रकाश।

## संग्राम

सदाचारी जीवन का सबसे बड़ा भारी धर्म यह है कि मनुष्य अपने आपको जाने। सच्ची तपस्या इन्द्रियों का संयम और दंभ है। यह जभी संभव हो सकता है जब मनुष्य को अपने दुर्बल अंश का ज्ञान हो। हमारे अंदर देवासुर संग्राम हो रहा है। असुर प्रत्येक की अवस्था में विशेष दुर्बल अंश को ढूँढते हैं और प्रहार करते हैं। एक मनुष्य की अवस्था में यह अंश काम दूसरे की अवस्था में क्रोध तीसरे की अवस्था में कोई और विषय होता है। जो मनुष्य अपने आप को नहीं जानता वह अपने दुर्बल अंश को भी नहीं जानता। अतएव इन्द्रियों को वश में रखने के अयोग्य है।

धर्म को धर्म के लिये पालन करना चाहिये। सुखों का प्राप्त करना जीवन का उद्देश्य नहीं है। धर्म का तत्व यह है कि मनुष्य अपने आप को स्वतंत्र रखे। जीवन एक संग्राम है। पग-पग पर आसुरी शक्तियाँ दैवीय शक्तियों से युद्ध करती हैं। इस संग्राम में आसुरी भाव कभी आपत्तियों का रूप धारण करते हैं, कभी विषयों का आदर्श आचार इन शब्दों में आ जाता है।

## समर्पण

पुरुषों को ब्रह्म से भिन्न मान कर जो कुछ अच्छा बुरा कल्पना कर रखा है न करें। आत्मा मानो बादलों से ढके सूर्य की भाँति है। जैसे बादलों से ढके सूर्य के दर्शन बादलों के हटने तक सुलभ नहीं होते, ठीक इसी तरह अज्ञानता से ढके होने के कारण उस आत्मा के स्वरूप को जानना असंभव है जो परमात्मा का ही रूप है।

उपासना की जान समर्पण और आत्मदान है। यदि यह नहीं तो उपासना निष्फल और प्राण रहित है। जब तक तुम अपनी खुदी और अहं को परमेश्वर के हवाले न करोगे तुम्हारे पास बैठना तो कैसा तुमसे कोसों भागता फिरेगा ईश्वर दर्शन। जब मिलेगा जब सांसारिक दृष्टि से प्रतीयमान वैरी, विरोधी और निन्दित लोगों को क्षमा करते हम इतनी देर लगावें जितना श्री गंगा जी तिनकों के बहा ले जाने में या आलोक की किरणें अंधकार के उड़ाने में लगाती हैं।

अच्छे, बुरे, अमीर, गरीब उस ब्रह्म रूपी समुद्र की तरंगों हैं जिनमें एक ही समुद्र ढाढे मार रहा है। अच्छे बुरे पुरुषों में जब हमारी जीव दृष्टि उठ जाये और हम उन्हें ब्रह्म रूपी समुद्र की तरंगों जान लें तो राग द्वेष की अग्नि बुझ जाएगी।

समुद्र जब स्थिर रहता है तब उसे ब्रह्म कहते हैं। जब उसी समुद्र में लहर उठती है तब वही समुद्र माया कहलाता है। ठीक ऐसे ही जब हमारा मन शांत है तब वही ब्रह्म है। जब इसी मन में तरह-तरह की तरंगें उठती हैं तब यही मन माया का रूप बन जाता है। जो हो न किंतु प्रतिभासित हो वही माया है।

बडप्पन की डींग, दलबंदी एवं ईर्ष्यादि सदा के लिये छोड़ दो, एवं पृथ्वी की भाँति सहिष्णु हो जाओ। लडकपन की चंचलता और युवापन की गंभीरता दोनों मिलाकर सब के साथ प्रेम से रहो। हृदय को महान बना डालो। क्षुद्र भावों को पार कर जाओ। अमंगल आने पर भी आनंद में मग्न हो जाओ। संसार को एक चित्र की भाँति देखो। जगत में कोई भी तुमको विचलित न कर सकेगा। अहंता को दूर कर दृढता से खड़े हो जाओ। काम, काँचन, मान, यश को छोड़कर ईश्वर को दृढता से पकड़ो।

दूसरों की सेवा करना शुभ कर्म है। इसी के प्रभाव से चित्त शुद्ध होता है और सब के भीतर बैठे हुए अंतर्यामी भगवान प्रकाशित होते हैं। आदर्श, धार्मिक क्षमा, धृति, शौच, शांति, उपासना और ध्यान का विस्तार ही जीवन और संकीर्णता ही मृत्यु है। जहाँ प्रेम वहीं विस्तार, जहाँ स्वार्थता वहीं संकोच। अतएव प्रेम ही जीवन का एक मात्र आधार है। इसीलिये अवश्य ही सभी से निश्छल प्रेम करना चाहिये। जिस कर्म से मन में धीरे-धीरे ब्रह्मभाव उदय होने में सहायता पहुँचे, वही कर्म उत्तम है।

सदा दाता बनो, अपना सर्वस्व दे डालो परंतु बदले में कुछ भी न चाहो। दूसरों से प्रेम करो, सहायता करो, सेवा करो, और तुमसे जो कुछ भी बने दूसरे के लिये अवश्य करो परंतु सावधान पलटे में कुछ न चाहो। व्यक्तिगत, देशगत, कालगत और कर्म-अकर्म का विचार कर साधन करो। यही सार है।

इदं तीर्थमिदं तीर्थं भ्रामंते तामसा जनाः। आत्म तीर्थं न जानन्ति कथं मोक्ष वरानने ॥

यह तीर्थ वह तीर्थ इस तरह से तमो गुणी ही भ्रमण करते हैं। जो आत्मा रूपी सच्चे तीर्थ को नहीं जानते उनके मोक्ष प्राप्त करने का साधन कृपा कर कहिये।

## संकल्प

सब संकल्प का ही अविष्कार है। जैसे संकल्प किये जाते हैं, उसी रूप में जगत की स्थिति होती है। संकल्प ही जगत है। जैसा पुरुष संकल्प करता है, वैसा ही वह स्वयं हो जाता है। जैसे -----

सति सक्तोनरोयाति, सद्भावं ह्येक निष्ठया। कीटको भ्रमरीं ध्यायन्, भ्रमरत्वय कल्पते ॥

जैसे भ्रमरी का ध्यान करता कीट, भ्रमरत्व को प्राप्त होता है। इसी प्रकार एक निष्ठा से ब्रह्म का ध्यान करता हुआ मनुष्य ब्रह्मत्व को प्राप्त हो जाता है। अतः हम सभी को सावधान हो कर बारंबार ब्रह्म का ही चिंतन करना चाहिये। इसी पर एक महात्मा ने कहा है -----

जो मन नारी की ओर निहारत, तो मन होत है नारी के रूपा।  
जो मन काहू से क्रोध करे, तब क्रोध मयी हो जाये तद्रूपा ॥  
जो मन माया ही माया रटे नित, तो मन डूबत माया के कूपा।  
सुंदर जो मन ब्रह्म विचारत, तो मन होत है ब्रह्म स्वरूपा ॥

धीर बनो और संयम में रहो। समग्र जीवन के सुख के लिये संयम आवश्यक है। ज्ञानी पुरुष वर्तमान सुखों का त्याग करता है, यदि ऐसे त्याग से उसे भविष्य में अधिक सुख मिल सकता है। यही नहीं वह वर्तमान दुःखों को भी स्वीकार कर लेता है, ताकि भविष्य में सुख भोग सके। विषयों का दास होना भविष्य में सुख भोगने के अयोग्य बना देता है।

जीवन का आदर्श यह है कि हम अपनी पृथक हस्ति का त्याग कर दें और अपने देश को, जहाँ से हम आये हैं फिर जायें। अर्थात् उस ब्रह्म में जिससे हम उत्पन्न हुए हैं लीन हो जायें। यह अंतिम आदर्श है। अच्छे कर्म हमें इस आदर्श तक नहीं ले जा सकते किंतु वह प्रारम्भिक सोपान है, उनके पीछे विचार की मंजिल आती है। विचार भी परमात्मा का शुद्ध स्वरूप नहीं दिखलाता, एक सीमा तक हम इसे साथ ले जाते हैं उसके पश्चात इसका त्याग कर देते हैं। जिस प्रकार एक ऊँचे स्थान पर पहुँच कर हम उस सीढ़ी को जिस पर से हम चढ़े हैं छोड़ देते हैं, उसी प्रकार एक स्थान पर पहुँच कर हम कर्मों और विचारों को छोड़ देते हैं। यह हमें हमारे ग्रह की द्योढी तक ले जाते हैं इससे आगे जाने का इनको अधिकार नहीं, अंतिम और अगली मंजिल भक्ति और योग की सहायता से पूरी होती है। इस अवस्था में मेरे-तेरे का भेद, जो कर्म और ज्ञान के समय में विद्यमान था, जाता रहता है। जीव अपने आप को ब्रह्म से प्रथक नहीं जानता-समझता और जिस प्रकार जल बिंदु जिसे सूर्य की किरणें समुद्र की गोदी से प्रथक कर देती हैं, वर्षों के भ्रमण के पीछे फिर समुद्र में जा मिलता है, उसी प्रकार हम सारी तपस्या के पीछे परमात्मा में लीन हो जाते हैं।

यह अवस्था मनुष्य के अपने यत्न का परिणाम नहीं होती वरंच परमात्मा की कृपा से ही प्राप्त होती है। अतएव परमात्मा के प्रेम में जो कुछ हो सके थोड़ा है। उन्हें ब्रह्माण्ड के सकल पदार्थ उच्च स्वर से पुकार रहे हैं। संसार की सुंदर वस्तुएँ एक विशेष सौंदर्यता की साक्षी हैं। प्रत्येक मधु वस्तु अति उत्तम मधु को दर्शाती है।

## मन

श्री महाराज जी ने एक बार मन (चित्त) पर वेद आधारित उपदेश दिया। इस उपदेश के माध्यम से श्री महाराज जी ने यह संदेश दिया कि मनुष्य में मन ही है जो उसे अच्छे और गलत कार्य करने की प्रेरणा देता है। इसीलिये महाराज जी ने इस बात पर बल दिया कि हर मनुष्य को अपने मन को शुभ संकल्पों वाला बनाना चाहिये। और भी बहुत कुछ है इस उपदेश में, आइये जानते हैं।

**ॐ यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदुसुप्तस्य तथैवेति। दूरंगमंज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥**

भगवान से मेरी यही प्रार्थना है कि मेरा मन, जो जाग्रत और स्वप्न दोनों ही अवस्थाओं में अत्यधिक वेग से दूर-दूर तक जाता है और उसी प्रकार से लौट भी आता है तथा जो ज्योतियों की भी ज्योति है, शिव संकल्प मय हो।

यह तो उपरोक्त वेद मंत्र का शब्दार्थ हुआ। आओ अब और विस्तार से मन के विषय में जानें ----

मूल प्रकृति अर्थात् महामाया कल्प के अंत में परमात्मा रूपी पति के साथ एकरूप हो जाती है और अपने प्रीतम अर्थात् परमात्मा के साथ आनंद भोग करती है। तदोपरांत उसके शुद्ध मन रूपी पुत्र उत्पन्न होता है। तत्पश्चात् महामाया महादेव जी से प्रार्थना कर मन को शुद्ध संकल्प कराके नौ द्वारों का नगर अर्थात् शरीर का निर्माण कराती है। अपने मन रूपी पुत्र को इस नगर अर्थात् इस शरीर का राज्य दिलाकर स्वयं आवेगों को प्रवाहित करती रहती है। इन आवेगों से ही मन में प्रवृत्ति और निवृत्ति दो प्रकार की लहरें उत्पन्न होती हैं। यह दो लहरें ही मन के दो प्रकार हैं। पहला प्रवृत्ति में रत मन जिससे मोह, अहंकार और काम आदि रूपी असुर उत्पन्न होते हैं और दूसरा निवृत्ति में रत मन जिससे वैराग्य, विवेक आदि रूपी देवता उत्पन्न होते हैं। इस तरह इस मन से ही सारे संसार की उत्पत्ति होती है। जैसे संकल्प वैसे ही संसार की उत्पत्ति। काम युक्त मन को अशुद्ध तथा काम रहित मन को शुद्ध मन कहा जाता है। इसीलिये कहा गया है ----

मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः। बद्धाय विषयासक्तं मुक्त्यैनिर्विषयं स्मृतं॥

अर्थात् मन ही मनुष्यों के लिये मुक्ति और बंधन का कारण है। विषयों में आसक्त मन बंधन और अनासक्त मन मुक्ति के लिये माना गया है। इसी कारण शास्त्रों में लिखा है कि मन को विषय-भोग से हटाकर स्वरूप में स्थित करने का यत्न करना चाहिये। वही मनुष्य के लिये परमपद है। इस मन को ही अंतःकरण, चित्त, बुद्धि और अहंकार आदि नामों से भी जाना जाता है। यह भी सच है कि मन स्वप्न तथा जाग्रत दोनों ही अवस्थाओं में स्पंदन करता है। इसीलिये कहा है कि ----

यथा स्वप्न मयो जीवो जायते म्रियतेऽपि च। तथा जीवा अमी सर्वे भवन्ति न भवन्ति च॥

जिस प्रकार स्वप्न के जीव स्वप्न में ही उत्पन्न होते हैं और स्वप्न ही में समाप्त हो जाते हैं। उसी प्रकार जाग्रत के जीव हैं भी और नहीं भी। अर्थात् माया मात्र से ही हैं। और भी कहा है ----

स्वप्न माये यथा दृष्टे गंधर्व नगरं यथा। तथा विश्वमिदं दृष्टं वेदांतेषु विचक्षणैः॥

जिस प्रकार स्वप्न में माया से गंधर्व नगर दृष्टि-गोचर होता है, उसी प्रकार यह सारा संसार भी मायावश दृष्टि-गोचर हो रहा है। ऐसा ही वेदों में बताया है। इसी कारण कहा गया है कि ----

न निरोधो नचोत्पत्ति बद्धो न च साधकः। न मुमुक्षुर्न वैमुक्तो इत्येषा परमार्थता॥

न तो संसार की उत्पत्ति होती है न ही प्रलय होती है। न कोई मुक्त है न कोई बद्ध है और न ही कोई मुक्ति का साधन ही है। बस यही तत्त्व ज्ञान है।

ऊपर लिखी बातों से सिद्ध होता है कि मनुष्य का मन ही सर्व प्रपंच का रचने वाला है। जिसका मन शुद्ध संकल्पों वाला हो जाता है, उसे सब कुछ अच्छा प्रतीत होने लगता है। जिसका मन वासनाओं के कारण अशुद्ध होता है, उसे सब कुछ मलीन प्रतीत होता है। सब कुछ मन से ही प्रतीत होता है। जिस का जैसा संकल्प होता है वैसा ही संसार दृष्टि-गोचर होता है।

एक बार याज्ञवल्क जी ने जनक जी को एक प्रश्न के उत्तर में कहा कि जीव का मन ही उसका आत्मा है तथा यही मन दूसरे जन्म धारण करता हुआ जिस-जिस शरीर के साथ मिलता है, उन्हीं विभिन्न शरीरों के धर्मों को धारण करके अपने कर्मों का फल भोगता है।

इसी कारण सभी ने इसी बात पर बल दिया है कि अपने मन को भगवत भजन में, दूसरों के हित में तथा साधना में लगाना चाहिये। इसी से मन शांत होता है और मुक्त हो जाता है।

## सृष्टि

मैं कहाँ से आया और क्या हूँ? मेरा अंत क्या होगा? जब मनुष्य अपने आप को आकृत जगत से धिरा हुआ देखता है, इस जगत के विषय में पूछता है कि यह क्या है और कहाँ से आया है? इसका बनाने वाला इसका अंश है, या इससे स्वतंत्र है। यदि इससे स्वतंत्र है तो उसका स्वरूप क्या है? क्या मनुष्य का जीवन इस जगत के विषय संबंध में ही व्यतीत होता है? या कोई और हस्ति भी है, जो इसके जीवन में दखल रखती है, इत्यादि विचार का सत्य ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त नहीं होता। वास्तव में एक ही तत्त्व है जो सदा एक सम रहता है। जिन लोगों की आर्षे विकृत से परे नहीं जाती, उनके लिये दृश्य संसार में दो वस्तुएँ हैं, प्रकाश और अंधकार। इन्हें अग्नि और पृथ्वी व पुरुष और स्त्री के नाम से भी पुकारा जाता है। सब वस्तुएँ इनके मिलाप से उत्पन्न हुई हैं। वर्तमान दृश्य सृष्टि के मध्य में बड़ी अग्नि है जहाँ बड़े देवता का स्थान हैं। इसके चारों ओर कई चक्र हैं, जिनमें प्रकाश और अंधकार मिले हुए हैं और सब के अंत में ज्वाला की एक दीवार है, इस में आनंद देने वाला प्रकाश उन्हें प्रतीत होता है।

हमारा ज्ञान हमारे अनुभवों तक सीमित है। चाहे मनुष्य तारों से भी डूँचा उड़ जावे, यह अपने अनुभवों के चक्र से बाहर नहीं जा सकता। यह अनुभव दो प्रकार के हैं। एक वो जो ज्ञानेन्द्रियों द्वारा

उत्पन्न होते हैं और दूसरे वह जिनको आत्मा अपनी अवस्थाओं का ध्यान करने से प्राप्त करता है। पहली प्रकार के अनुभव वाह्य जगत का ज्ञान देते हैं और उनके ग्रहण करने में हम परतंत्र हैं। यदि हम नेत्र खोलें तो यह हमारे वश में नहीं है कि हम कुछ देखें या न देखें। हम किसी अमिश्रित अनुभव को अपनी कल्पना से गढ़ नहीं सकते। अंधा अपने सारे मानसिक बल से नीले अथवा पीले रंग को अनुभव नहीं कर सकता। बहरा नहीं जान सकता कि शब्द क्या है। यह मनुष्य के वश में है कि वह भिन्न-भिन्न अमिश्रित अनुभवों को मिला कर नये मिश्रित भाव उत्पन्न करे। अन्य जीव केवल प्रत्यक्ष का अनुभव कर सकते हैं क्योंकि परमात्मा ने इतनी ही शक्ति दी। परंतु मनुष्य परोक्ष को अपनी ध्यानावस्था द्वारा अनुभव कर सकता है। मनुष्य अव्यक्त को व्यक्त मूर्ति मान अनुभव प्राप्त कर सकता है। इसी वास्ते मनुष्य शरीर को हस्त-छिन्न विषयों में न खोवें।

## साधना

१९३६ से पूर्व समय-समय पर दिये उपदेशों में श्री महाराज जी सभी को थोड़ा ध्यान, थोड़ा प्राणायाम करने के लिये कहते थे। आपके लाभार्थ ऐसे कुछ उपदेश प्रस्तुत हैं।

(१) ज्योति स्वरूप और प्रकाश स्वरूप परमात्मा का सुनहरी प्रकाश आँख मीच कर दसवें द्वार में, त्रिकुटी में देखा करो तथा उसकी भावना किया करो। परमात्मा अपने बाहर और भीतर सब जगह छाया हुआ है, उसके सिवाय कुछ नहीं। ऐसी भावना किया करो। क्षण मात्र भी ऐसी भावना मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है।

(२) किसी स्थान पर पद्मासन लगाकर या किसी प्रकार भी सीधे बैठकर शांति से प्राणों को बाहर निकालें और यह भाव करें कि प्राणरूपी पुष्पांजलि परमात्मा को समर्पण करते हैं। जब प्राण बाहर न ठहर सके, बेचैनी और घबराहट हो तो उसको छाती में, शरीर में और सब नसों में जोर से भर लेना चाहिये और उस समय ॐ-अल्लाहु , ॐ-अल्लाहु मंत्र मन ही मन जपना चाहिये। जब भीतर प्राण बिलखने लगे तो लंबा स्वाँस बाहर को निकालना चाहिये। इस प्राणायाम को न्यूनतम तीन, सात और अधिकतम इक्कीस बार तक करना चाहिये।

(३) कभी-कभी शरीर के विभिन्न अंगों में प्राणों को भर लेना चाहिये। जैसे हृदय का ध्यान करके वक्ष में, नाभि कमल का ध्यान करके उदर में और अन्यान्य अंगों में भी भर कर परमात्मा का ध्यान करना चाहिये। ऐसा करने से उन सभी अंगों में खूब शक्ति का संचार होगा। यह सब बहुत शांति से और मंद गति से करना चाहिये। ऐसा करते समय ठंड का भी अनुभव नहीं होता है।

(४) जंगल में या ऐसे ही किसी एकांत स्थान में जाकर तारतम्यता की रीति से 'ॐ सोऽहं' मंत्र का उच्चारण करना चाहिये। तत्पश्चात् प्राणों के साथ इस जाप की ध्वनि को एक करके जपना चाहिये। भीतर को स्वाँस लेते समय 'ॐ' तथा बाहर निकालते समय 'सोऽहं' कहना चाहिये। तब प्राण स्वयं ही इस मंत्र को जपते दिखाई देंगे।

माँ छोटे बच्चे को आम का फल खेलने को देती है। बच्चा उस आम को बाल स्वभाव से अपने हाथ से पकड़ कर मुँह के पास ले जाता है और चूसने लगता है। ऐसा करने से अन्त में वह आम फूट पड़ता है और बच्चे के हाथ, पैर, मुँह और कपड़े सब पर आम का रस लग जाता है। अब तो बच्चे को न माँ की सुध न अपने आप की सुध बस वह तो आम के रस में आनंद लेने लग जाता है। ठीक इसी प्रकार श्रुति माता (वेद) का दिया हुआ 'ॐ सोऽहं' महावाक्य रूपी अमर फल जब जीव

एकांत में अंतःकरण से जपता है, तो अंत में उस फल के फूटने पर वह परमानंद रस में मग्न हो जाता है।

८४ लाख जीवनों में मानव जीवन ही सर्वश्रेष्ठ है, अतः इस मानव शरीर के द्वारा तत्व ज्ञान न हुआ तब बड़ी हानि है। यह शरीर ही मंदिर अर्थात् देवालय है। जीवात्मा ही शिव है। अज्ञान रूपी जो अंधेरा है उसको दूर करना ही शिव पूजा है। अतः २१६२० श्वासों में शिव स्वरूप ही 'ॐ सोऽहं' कहते हुए सोऽहं भाव से भजना चाहिये, पूजना चाहिये, इससे ही जीव भव बंधन से पार होता है। इसी से जब अज्ञान रूपी अंधेरा हटता है तो ज्ञान रूपी प्रकाश से देवालय अर्थात् शरीर भर जाता है। तभी जीव शिव रूपी आत्मा में मग्न होता है और मुक्त हो जाता है।

(५) मानव शरीर में शौच एवं लघु-शंका स्थान के मध्य में बहुत सी सूक्ष्म-स्नायु परस्पर मिलकर कमल पुष्प का आकार लेती हैं। यहीं पर कामदेव का निवास है। यहाँ पर कई सूर्य और चंद्रमाओं के बराबर का प्रकाश उपस्थित है, ऐसा योगियों ने वर्णन किया है। इस स्थान को गणेश देव का स्थान भी कहा जाता है।

इस स्थान को सिद्धासन में बैठकर, बायें पैर की एडी द्वारा दबाकर, शरीर और गर्दन को सीधा रखकर, आज्ञाचक्र अर्थात् भ्रुकुटियों के मध्य में ध्यान लगाने से ज्ञान रूपी अग्नि प्रज्वलित हो जाती है। इसके फलस्वरूप ब्रह्मरंध्र से अमृत गिरने लगता है। इस अमृत से अशुद्ध कफ पिघल कर नेत्र और नासिका द्वारा गिरने लगता है।

इस प्रकार की क्रिया तथा ध्यान के फलस्वरूप गणेश-देव के स्थान पर अपार प्रकाश योगियों को अनुभव होने लगता है। यही क्रिया कूडलिनी जागरण कहलाती है।

(६) परम आनंद हेतु किसी भी स्वच्छ स्थान का चयन कर वहाँ सिद्ध आसन में प्रत्येक दिन एक ही समय पर बैठ कर पहले आधा घंटे तक अपने आराध्य गुरु के चित्र का खुले नेत्र रखकर अवलोकन करें। तत्पश्चात् नेत्रों को बल पूर्वक बंद करें और नेत्रों से दशम द्वार को देखने का अभ्यास करें। तत्पश्चात् अंगुली की सहायता से अपने दौनों कर्ण छिद्रों को बंद करें और दायें कर्ण में ध्यान लगायें। ऐसा करने से दाहिने कान में भंवरा, झींगुर, चिड़ीया एवं चैकुला की कलरव ध्वनि सुनाई देती है और विशेष सूक्ष्म शब्दों पर ध्यान देने से घंटे का शब्द भी सुनाई देता है।

यह प्रथम अवस्था नाद की है। इसके श्रवण से मन की वे धारयें जो हृदय के अनुसार ब्रह्मरंध्र में एकत्रित थीं पवित्र बुद्धि रूपी भवानी माँ की कृपा से मन सहित समाप्त हो जाती हैं और इस ध्यान-अभ्यास के फलस्वरूप स्व-इच्छा ईश्वर-इच्छा में परिवर्तित हो जाती है। इसी ध्यानाभ्यास के फलस्वरूप जीव के मन पर चढ़ा हुआ अज्ञान रूपी बादल छट जाता है और जीव को निज स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। इसी कारण जीव को उसका शरीर बहुत हल्का अनुभव होने लगता है।

दूसरी अवस्था में सूक्ष्म परमाणु लाल, नीले एवं पीले आदि रंगों में सुंदर रूप बदलते हुए दीखने लगते हैं। उसके बाद शब्द नाद बंद होकर चमकते हुए तारों का प्रकाश दिखाई देने लगता है। इस अवस्था में मन सत्य ग्रहण को उद्यत हो जाता है। शंख और ॐ की एकाकार ध्वनि से प्रेम की लहरें उत्पन्न होने लगती हैं। पुनः हल्की धुंधली फैली हुई श्वेत ज्योति दिखती है। तत्पश्चात् धीमी-धीमी महीन सी ध्वनि सारंगी की वीणा तथा बाँसुरी आदि की ग्रहण कर इस सप्तवर्ण दुर्ग रूपी शरीर से निकल कर जीव परमेश्वर के रूप को प्राप्त हो जाता है।

उपर्युक्त उपदेशों के साथ ही श्री महाराज जी ने एक अवसर पर पानीपत में सन १९०९ में बाबा शाहकलंदर नाम के स्थान पर एक “खयाल” बनाकर वहाँ के सांझियों को सुनाया। इस “खयाल” में वर्णित ध्यान योग को सुनकर वहाँ उपस्थित लोगों में श्री महाराज जी के प्रति बहुत श्रद्धा उत्पन्न हुई। हमारा प्रयास है कि हम आप सभी पाठक बंधुओं के लाभार्थ उस “खयाल” को यहाँ दे सकें। यही खयाल आपके पठन हेतु प्रस्तुत है। इसमें वर्णित ध्यान योग को आप सभी भक्त-गण अत्यधिक ध्यानस्थ होकर ही पढ़ें, तभी लाभान्वित हो सकेंगे।

### ध्वजा फड़के शून्य में ---

ध्वजा फड़के शून्य में, बाजे अनहद तूर।  
तकिया है मैदान में, पहुँचेगा कोई शूर।।

गगनमंडल में जो जन जाकर, सुने बेहद अनहद बानी।  
सातो रंग निरखता यहाँ पर, हो जावे पूरण ज्ञानी।।

श्याम पुतलिया बदल आँख की, रूप रंग देखो सारे।  
सप्त ऋषियों ने सात घाट पर, भिन्न-भिन्न आसन मारे।।  
जिसमें थाना सहस्र कमल का, तीन लोक जहाँ विस्तारे।  
जनिता सविता देब सबन के, इधम रूप सातों धारे।।  
चूँ-चूँ चैकुला झालसमद की, घंटा शंख बजे न्यारे।  
धूम निहार गगन में धंसि चल, ज्योति जरे नौ लख तारे।।  
पाँच कमल के बीच कुंडलिनी, सहज-सहज ही फुंकारे।  
मेरु दंड से सीधा होकर, तोड दिये नभ के तारे।।  
तीन लोक की रचना यहाँ पर, भई सुरति यहाँ दीवानी।।  
गगन मंडल में जो जन -----

दर्शन यहाँ तिरलोक पति के, पावो मन में हरषाओ।  
सूची अग्र छिद्र में होकर, बंक नाल में घुस जाओ।।  
तिरछा मारग बंक नाल का, बिन सद्गुरु कछु नहीं पाओ।  
ऊँचा-नीचा-ऊँचा होकर, त्रय मंडल पर चढ जाओ।।  
प्रत्याहार धारणा धारो, सिमट बीच सुषमन आओ।  
पी-पी पपीहा ऊपर बोल्यो, कूरम बनकर छिप जाओ।।  
और मरे सब जग का मरना, तुम जीते जी मर जाओ।  
भृंगी गुरु का शब्द सुनो तुम, चरण गुरु के चित लाओ।।  
तन मन सौपो गुरु अपने को, हो जाओ सर्वस दानी।।  
गगन मंडल में जो जन -----

यह ब्रह्मांड फोड अण्डे से, त्रिकुटि का मंडल साजा।  
योजन लक्ष-लक्ष का घेरा, सरे जीव का सब काजा।।  
हास विलास यहाँ पर अद्भुत, ओं-ओं हू-हू बाजा।  
रस का उठे सरुर यहाँ पर, अनहद का बादल गाजा।।



सहस्र भावु की ज्योति जगे, जहाँ मदन देखकर ही लाजा ।  
ज्ञान विज्ञान हुए जब यहाँ से, मोह जाल टूटा धागा ॥  
गंगा यमुना और सरस्वती, इनके भीतर तू आजा ।  
अमृत रस में यहाँ नहाकर, विश्वनाथ दर्शन पाजा ॥  
योजन कोटि सुरति फिर जाकर, दशों शून्य में मगनानी ॥  
गगन मंडल में जो जन -----

द्वादश गुण प्रकाश यहाँ का, त्रिकुटी से शून्य में आई ।  
रूपवंत देवों से मिलकर, सिंधु सरोवर जा नहा आई ॥  
महाशून्य की छवि को कोई, कैसे कहो सके गाई ।  
मानसरोवर अमृत धारा, आनंद की नदियाँ पाई ॥  
बजे सारंगी सितार और बाजे, श्रुति शब्द में ढहराई ।  
वसु मरुत यहाँ वास करे हैं, कहा कहुँ सुंदरताई ॥  
अग्नि चंद्र समान मुखों से, मंद-मंद ही मुसकाई ।  
आयु षोडस वर्ष सबन की, ऐसी ही अबला पाई ॥  
सूर्यकांत की भूमि बनी यहाँ, अमृतरस बरसे पानी ॥  
गगन मंडल में जो जन ----

रिमझिम-रिमझिम ज्योति झलके, उठे प्रेम की लहर घनी ।  
बाग बगीचे अमर फलों के, लालों की यहाँ सड़क बनी ॥  
अमी सरोवर बाग-बाग में, तट उनका पारस की मणी ।  
कैसे शोभा कहुँ यहाँ की, सब कुछ जाने आप धनी ॥  
स्वयं प्रकाश रूप को लेकर, सुरति फिर आगे को चली ।  
योजन अरब गई ऊपर को, आगे मिल गई प्रेम गली ॥  
दसों दिशा में घोर अंधेरा, मगन भई नहीं छली बली ।  
योजन खरब गई नीचे को, यहाँ से देखी सैर भली ॥  
इस पद में दस नील अंधेरा, यहाँ से सुरति उलटानी ॥  
गगन मंडल में जो जन -----

योजन खरब गई नीचे को, थाह यहाँ की नहीं पाई ।  
धर सतगुरु का ध्यान सुरतिया, उलट गगन पर चढ़ आई ॥  
महा शून्य से आगे आकर, सिताऽसिता नदिया छाई ।  
मंडल चारि पुरुष दर देखा, भंवर गुफा झूली जाई ॥  
एक हिंडोला यहाँ पर अद्भुत, झूल रहे मुनिवर राई ।  
इडा, पिंगला रज्जू करके, सुषमन की पटली लाई ॥  
कुण्डली का लंगर जब खींचा, पींग गगन झोका खाई ।  
परा पश्यतो और मध्यमा, सखियों ने वाणी गाई ॥  
अनहद घोर घटा बिन बजती, बंशी मधुरी मन मानी ॥  
गगन मंडल में जो जन जाकर -----

गोपी मधुरी वाणी गावें, वंशी बजावें नंद कुमार ।

एक-एक गोपी संग मिलकर, सोऽहं-सोऽहं रहे उचार॥  
हियरा से हियरा मिल भेंटे, आनंद को-को करे सुमार।  
और देव की गम नहीं यहाँ पर, महादेव लई मन में धार॥  
गोपी बनकर मिले गले से, चरणों से गल बैया डार।  
एक हो गये स्वयं रूप में, नयनों से नयनों की धार॥  
गंगा यमुना अचल हो गई, ऐसा अद्भुत किया विहार।  
रुद्र साध्य मुनि एक हो गये, ताड़ी लागी अगम अपार॥  
नाका दूटा सत्य लोक का, उड़ गये हंसा सैलानी॥  
गगन मंडल में जो जन -----

ज्योति हंस यहाँ वास करे है, सूक्ष्म चैतन्य ही दरशाया।  
जड-स्थूल नहीं यहाँ पर, नहीं यहाँ पर काया-माया॥  
प्रेम दिवानी हुई यहाँ पर, सत्य-सत्य आपा पाया।  
हक्क-हक्क ध्वनि सुनके बीन की, फिर आपे में मगनाया॥  
रूपा-सरूपा नदियाँ यहाँ पर, सोना रूपा जल छया।  
बन-उपवन हैं यहाँ पर अद्भुत, कोटिचार इनकी छाया॥  
कोटिन सूरज चाँद समाना, पुहुप वृक्ष पर लगी आया।  
परमहंस यहाँ बास करे हैं, एक भुशुंड काग पाया॥  
रसबस के सीकारे यहाँ पर, हँस करे मधुरी बानी॥  
गगन मंडल में जो जन -----

सत्य पुरुष का दर्शन कीन्हा, क्या वरणों सुंदरताई।  
कोटिन सूर्य चाँद देखलो, एक रोम से शरमाई॥  
पद्मत्रय लोक बराबर, बिछी सेज सुख की पाई।  
जाकर सोई पिया संग अपनी, सुध बुध सारी बिसराई॥  
संत कहे अब अगम लोक की, महिमा और उत्तमताई।  
अरबन-खरबन ज्योति चमके, कोटि शंख ज्यो मलुकाई॥  
अगमलोक की गम नहीं मुझको, गूंगे ने मिसरी खाई।  
“परमानंद” गुरु चरणों पर, कोटि-कोटि ही बलि जाई॥  
गगन मंडल में जो जन -----

गुरु मिला आपा जब मेटा, श्रुति शब्द में मगनानी।  
सातों रंग निरखता यहाँ पर, हो जावे पूरण ज्ञानी॥

## वेदांत सिद्धांत

जो कुछ यह नाना रूप प्रतीत हो रहा है यह वस्तुतः एक है। वास्तव में परमार्थ सत्ता असली हस्ती है। जिसको ब्रह्म या परमात्मा कहते हैं। वह शुद्ध चैतन्य व शुद्ध ज्ञान है। अर्थात् वह जानने वाला नहीं किन्तु स्वयं ज्ञान है। वह निर्गुण है। वह आप ही है जो कुछ है। उसमें और कुछ नहीं। इसीलिये वह निर्गुण निर्विशेष है। पर वह सत् हस्ति एक है और कुछ नहीं तब यह

सारा प्रपंच कहां से आया? जिसको हम अपने चारों ओर देखते हैं। जिसमें हम अपनी स्वयं एक अलग सत्ता रखते हैं। तो उत्तर यह है कि ब्रह्म के साथ अनादि काल से एक शक्ति है जिसको माया या अविद्या कहते हैं। यह सारा प्रपंच उसी से दिखाया जाता है। यह शक्ति न सत् कहलाती है क्योंकि सत् केवल ब्रह्म है, न असत् क्योंकि किसी न किसी भांति इस प्रपंच को प्रकट कर देती है। वस्तुतः यह इस भ्रान्ति का अनिर्वचनीय कारण है। जिससे हम अपने चारों ओर जड़ चैतन्य की विविध सृष्टि देख रहे हैं। ब्रह्म इस शक्ति के द्वारा इस प्रकार जड़-चैतन्य की अनेक सृष्टि को दिखाता देता है जैसे कोई मायावी इन्द्र जालिक अपनी माया शक्ति से अनेक प्रकार की जड़-चेतन वस्तुएँ प्रकट कर दिखाता देता है, जो वस्तुतः भ्रान्ति मात्र होती है।

शक्ति रूप से जहाँ तक माया का संबंध ब्रह्म के साथ होता है, वहाँ तक हम ब्रह्म को जगत् का उपादान कारण कह सकते हैं। अर्थात् स्वरूप से निमित्त और माया स्वरूप से उपादान। पर माया ब्रह्म की ही अनिर्वचनीय शक्ति है, उससे भिन्न पदार्थ नहीं है। माया शबल ब्रह्म ही जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण है। माया के संबंध से प्रायः ब्रह्म को ईश्वर कहते हैं। माया ईश्वर के अधीन होकर क्रमशः इन भिन्न-भिन्न रूपों में परिणत हुई है जिनका समुदाय यह जगत् है। जो अपन-अपने प्रति नियत नाम और रूप से निखरे जाते हैं। भूत, भौतिक शरीर और इन्द्रियाँ यह सब उसी का परिणाम हैं। यह सारे शरीर जो एक दूसरे से भिन्न हैं इन सब में एक ही अभिन्न ब्रह्म है। जो माया कृत ज्ञान और कर्म के भेद से प्रति व्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है। वही जीव है। जीव का परमार्थ रूप ब्रह्म है। वह एक अद्वितीय ब्रह्म है तथा प्रति शरीर ज्ञान और कर्म की भिन्न-भिन्न शक्तियों से एक जीव दूसरे से भिन्न किया जाता है। ये शक्तियाँ माया का कार्य हैं इसलिये मिथ्या हैं। यह जगत् इन ही भिन्न-भिन्न जीवों से भरा हुआ है। पर न यह जीव और न उसकी उपयोगी वस्तुएँ परमार्थ सत् हैं। क्योंकि ये दोनों माया से सम्बन्ध रखते हैं, माया से दिखाया जाते हैं, इसीलिये मिथ्या हैं। इसी प्रकार यह सारा भेद मिथ्या है। वस्तुतः भेद है नहीं और प्रतीत होता है। इसी मिथ्या दृष्टि ने अपना परमार्थ स्वरूप भुलाया हुआ है। अब यह भूला हुआ आत्मा अपने असली स्वरूप को नहीं जानता है। इसका अपना परमार्थ स्वरूप इस माया के परदे से ढका हुआ है। यह अपने आपको ब्रह्म समझने की जगह उन उपाधियों, शरीर और इन्द्रियों को अपना आपा समझ रहा है जो माया का कार्य है। इस प्रकार यह आत्मा, शरीर, इन्द्रियों और मन को ही अपना असली स्वरूप जानकर, इनकी सारी अवस्थाओं को अपनी अवस्था मानता हुआ कहता है, मैं मोटा हूँ, मैं दुबला हूँ, मैं अंधा हूँ, मैं बहरा हूँ, मैं शोक में हूँ, मैं चिन्ता में हूँ, मेरा जन्म अमुख सम्वत् में हुआ, अब मैं बूढ़ हो गया हूँ, मैं रोगी हूँ और मैं मर जाऊँगा इत्यादि।

सो यह आत्मा जो परमार्थतः शुद्ध, ज्ञानस्वरूप और अनंत है, इस अध्यास के कारण यह एक सीमा हद में आ जाता है, अल्पज्ञ और अल्पशक्ति हो जाता है, और कर्ता भोक्ता बन जाता है। अपने कर्मों द्वारा पुण्य और पाप का संचय करता है और ईश्वर की मर्यादा में उनके शुभाशुभ फल भोगता है। जब तक यह रचना स्थिर रहती है, यह भी बार बार जन्म ग्रहण करता है। कर्म करता है और फल भोगता है। कल्प के अंत में ईश्वर इस सारे प्रपंच का संहार कर लेते हैं। अर्थात् यह सारा माया का कार्य अव्यक्त माया के रूप में वापस आ जाता है। तब ये सारे जीव करने भोगने से रहित हो जाते हैं, मानो उतने काल के लिये गहरी नींद सो जाते हैं। पर उनके कर्मों की वासना अब भी नष्ट नहीं होती है। अतएव फिर नये शरीरों को धारण करते हैं, जब ईश्वर फिर नये सिरे से सृष्टि रचते हैं। और इसी तरह वह आगे नये कल्पों में शरीरों को धारण करते चले जायेंगे जैसे कि ये अनादि काल से पिछले कल्पों में धारण करते चले आये हैं। इसी का नाम संसार है। यह संसार तब तक बना रहता है जब तक अज्ञान है। जब ज्ञान से अज्ञान का नाश हो जाता है तब यह संसार निवृत्त हो जाता है। पर यह उस एक के लिये निवृत्त हुआ भी दूसरे के लिये बना रहता है जो अज्ञान की अवस्था में है। वह मार्ग जिससे ज्ञान का उदय होता है, वेद में बतलाया गया है। वेद में दो मार्ग

बतलाये हैं। एक कर्म का दूसरा ज्ञान का। कर्म चाहे कैसा भी ऊँचे से ऊँचा क्यों न हो वह मनुष्य को संसार से पार नहीं ले जा सकता। उसका बड़े से बड़ा फल भी संसार के अंतर्गत ही होता है। दूसरा मार्ग ज्ञानकांड का है। इसके दो भेद हैं। एक वह भाग जिसमें ब्रह्म का ज्ञान वहाँ तक दिया है जहाँ तक उसका संबंध जगत् से है। इस भाग में ब्रह्म के भिन्न भिन्न गुण वर्णन किये हैं। अर्थात् इसमें सगुण ब्रह्म, ईश्वर और हिरण्यगर्भ का उपदेश है और यह उपासना के लिये है। इसको उपासना कांड कहते हैं। इसमें सगुण ब्रह्म की उपासना से जीवात्मा मुक्ति नहीं पाता है किन्तु वह शरीर को छोड़ कर केवल ब्रह्म लोक में जाता है। जहाँ वह एक अलग जीव के तौर पर बना रहता है। यद्यपि उसकी शक्ति व ज्ञान बहुत बढ़ जाते हैं। अंततः वह निर्गुण ज्ञान का लाभ करता है और मुक्त हो जाता है।

दूसरा वह मार्ग है, जिसमें ब्रह्म का शुद्ध स्वरूप सारे गुणों से रहित निर्गुण वर्णन किया है। जिसमें जीवात्मा को ब्रह्मरूप बतलाया है। वे ज्ञानी जो ब्रह्म के शुद्ध स्वरूप को जानते हैं जो सारे गुणों से परे है, और महावाक्यों 'तत्त्वमसि' आदि द्वारा जान लेते हैं कि आत्मा के परमार्थ स्वरूप और परमात्मा में कोई भेद नहीं है। वह उसी क्षण परम मुक्ति लाभ करते हैं। अर्थात् माया के प्रभाव से परे हो जाते हैं और अपने असली स्वरूप को पा लेते हैं। जो केवल शुद्ध ब्रह्म है। यह अद्वैत सिद्धांत है। जिसके विचार से जीव कृतकृत्य हो जाता है। उसके ज्ञान में ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं रहता। यही मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य है। इसी के लिये परमात्मा ने मनुष्य शरीर दिया है।

## मनुष्य के जानने योग्य ज्ञान की अद्भुत बातें

अपने चारों ओर सृष्टि की रचना की बहुतायत को देख कर स्वाभाविक विचार होता है कि इसको किसने और किसलिये बनाया। सुनने में आया है कि इसको परमात्मा ने जीवों के कर्मानुसार सुख, दुःख भोगने के लिये बनाया है जिससे परमेश्वर के महत्व, कारीगरी और विचित्र रचनायें देखकर परमेश्वर का ज्ञान होवे और जगत् से वैराग्य होवे। जिससे जीव केवल परमात्मा के स्वरूप को चिंतन करता हुआ परमेश्वर को प्राप्त हो जाये। यही इसका मुख्य उद्देश्य है। परन्तु हमको नानाप्रकार का दुःख, क्लेश, यंत्रणायें होती हैं और दीखती हैं, तो यही विचार होता है कि परमेश्वर ने इस जगत् को क्यों बनाया जिसमें जीवों को इतना दुःख होता है, न बनाता तो अच्छा होता क्योंकि जीव भी सुखी रहते और आप भी शांत मौज में सोता रहता। ऐसे बखड़े में पड़ना परमात्मा की बुद्धिमानी का काम नहीं है।

परन्तु हम इससे डरते हुये कहते हैं, परमात्मा की महिमा, माया, लीला अपार है। जिसको वेदादि, ऋषि, मुनि, देवता कोई भी पार नहीं पा सकता है। उसका ज्ञान समुद्र के समान है और हमारी बुद्धि कुल्हवावत् है। कुल्हवा में सारा समुद्र कैसे भर सकता है? ऐसे परमात्मा की रचना और महिमा हम बुद्धि द्वारा कैसे जान सकते हैं? जो इन्द्रिय, मन, वाणी की गति से बाहर है।

परन्तु हम किन्हीं-किन्हीं शास्त्रों के वचनों से और अपने नित्य के अनुभव से यह निश्चय करते हैं कि बहुतेरे जीवों में, विशेषकर मनुष्यों में जन्म से ही दुःखी, दीन, नीच, लंगड़े, लूले, अंधे, अपाहज, रोगी, मंदबुद्धि वाले, मलिन, कुरूप इत्यादि और दूसरी ओर सुखी, समृद्ध, सुडोल, सुंदर, अच्छी आंखों वाले, सर्वांगों से हृष्ट पुष्ट, अच्छी स्मृति, बुद्धि व कुल वाले हैं। राजा हैं। सन्यासी हैं। ब्राह्मण हैं। एक पालकी पर चढ़कर चलता है, एक बिना पालकी के। ये सब विषमतायें कैसे उत्पन्न

हुई हैं? यदि कहो कि पूर्व कर्मों के अनुसार। जैसे-जैसे जीव ने शुभाशुभ कर्म किये हैं। यह उनका फल है। जिन्होंने पुण्य कर्म किये हैं, दूसरे जीवों को सुख दिया है, दान पुण्य किया है, वे सुखी हैं और जिन्होंने विपरीत किया है वे दुःखी हैं।

तो अब प्रश्न होता है कि यदि मनुष्य को अपने पिछले कर्मों का ज्ञान होता, कि मैंने पूर्वजन्म में अमुक पाप किया था उसका यह दुःख रूपी फल मुझे मिल रहा है और अमुक पुण्य कर्म किया था जिसका यह सुख रूपी फल मिल रहा है, तो कोई भी पाप कर्म न करता। सब के सब पुण्य रत रहते। जब तक कोई अध्यक्ष अपराध करने वाले के चित्त पर अपराध सिद्ध करने का प्रमाण न दे देवे तब तक उसे दंड देने का अधिकार नहीं है। इसलिये परमात्मा हमको शुभाशुभ का ज्ञान कराता और पीछे दंड और पुरुष्कार देता तो अच्छा होता।

एक यवन आचार्य से पूछा गया कि 'यह सृष्टि संग्राम रूपा और सुखी-दुखी किसने बनायी है?' उसने कहा 'खुदा ताला ने'। फिर पूछा 'उसने किसी को जन्म से सुखी और किसी को दुखी क्यों बनाया, उसके लिये तो सब पुत्र समान हैं?' तो उत्तर मिला कि 'इसकी कतारें बनायी हुई हैं। इनमें दुःखी चलते रहें। इनमें सुखी चलते रहें। एवं परस्पर एक दूसरे को देखकर सुखी-दुखी होते रहें। बस यह उसकी मर्जी कुदरत है आगे हम कुछ नहीं जानते'।

परमेश्वर के लिये यह कभी ठीक नहीं हो सकता कि किसी को बिना कारण के ही दुखी-सुखी बनावे। वह तो पक्षपात रहित है। वह करुणालय-वरुणालय है, और अपार दया करने वाला है।

ऐसे ही एक बार ईसाइयों के एक बड़े आचार्य से पूछा कि 'तुम लोग पूर्व जन्म ही नहीं मानते तो सृष्टि किसने रची है?' उसने कहा 'ईश्वर ने'।

अब प्रश्न उठता है कि उसने एक को जन्म से ही लंगड़ा-लूला और अंधा क्यों बनाया? और दूसरे को सर्वांग सुंदर सुखी क्यों बनाया? अपनी मर्जी से बिना पुण्य पाप किये बनाया तो वह ईश्वर समदर्शी, पक्षपात रहित नहीं हो सकता। परमेश्वर सबको दुःखी-सुखी बनाता तो वेदों में, शास्त्रों में और महात्माओं द्वारा एक स्वर से यह क्यों कहा जाता कि परोपकार करो। दुखियों के दुख दूर करो। अंधों को आँख दो। रोगियों के रोग दूर करो। कंगालों को धन दो और भूखों को भोजन दो।

यदि राजा किसी अपराधी को कारागार में डाल दे तो जैसे उसे मुक्त करने वाले को दंड मिलता है। इसी प्रकार से यह सुखी-दुःखी परमेश्वर ने बनाये होते, तो इनके विरुद्ध कर्म करने वालों को परमेश्वर दंड देता। पर ऐसा नहीं है। इसके विपरीत उनको स्वर्गधाम और मोक्ष की प्राप्ति कराता है। इससे सिद्ध है कि सुखी-दुःखी जो संतान उत्पन्न होती है वह माता पिता के कर्म से होती है।

वेद में कहा है कि माता-पिता गर्भाधान से पूर्व अमुक-अमुक कर्म और भोजन करें और पीछे संकल्प करें कि हम एक शूरवीर और भक्त को उत्पन्न करें। रामचन्द्र जी की माता जब वह गर्भ में थे, अग्निहोम करती थीं और तत्पश्चात् परमेश्वर से प्रार्थना करती थी कि 'हे परमेश्वर! हमारे गर्भ से स्वयं अवतार लो। भारतवर्ष को और सब दीन दुखियों को सुख दो। अत्याचारियों से मुक्त करो। सुख, शान्ति, प्रेम और भक्ति बढ़ाओ। सबके साथ समान बर्ताव करो'। अभिप्राय यह है कि उनके माता पिता के संकल्पों का ही फल था जिससे रामअवतार हुआ।

ऐसे ही देवकी और वसुदेव चाहते रहते थे कि हमारे गर्भ से भगवान अवतार लें और सारे संसार के लिये मुक्ति का द्वार खोल दें। वैसा ही हुआ। उनका उपदेश गीता में सबके लिये समान है।

एक ऋषि जब उनकी पत्नि के गर्भ रहा तब से उसको देववाणी, वेद के मंत्र और शास्त्रार्थ करने

की कथा सुनाया करते थे। उनका पुत्र गर्भ से ही अपने पिता के उच्चारण की अशुद्धियाँ बताने लगा। तो पिता ने क्रोध में लात मारी। जिससे पुत्र का जन्म आठ जगह से टेढ़े शरीर के साथ हुआ। पुत्र का नाम अष्टावक रखा गया। अष्टावक पहुँचे हुए महात्मा, पंडित और ज्ञानी बने। एक समय वह राजा जनक की सभा में गये। उनके टेढ़े-मेढ़े और कुरूप शरीर को देखकर जनक सहित सभी विद्वान हँस पड़े। उन सभी को हँसता देख अष्टावक ने भी अट्टहास किया। यह देखकर राजा जनक और सभी उपस्थित जनों को बड़ा आश्चर्य हुआ और अष्टावक से हँसने का कारण पूछा गया। अष्टावक जी ने कहा 'मैंने तो सुना था कि जनक और उनके सभासद विद्वानों की परीक्षा करते हैं। परन्तु वे तो हड्डी परीक्षक कसाई और त्वचा परीक्षक चमार हैं'। यह सुनकर उपस्थित जन बहुत लज्जित हुए। सभी ने अष्टावक जी का अभिवादन किया और उचित आसन दिया।

अष्टावक जी को मिला सम्मान पिता द्वारा उनकी गर्भवती माँ को दिये गये उपदेश रूपी कर्म का फल है। तथा उनका अनादर उनके पिता द्वारा उनकी गर्भवती माँ को दिये गये पदाघात रूपी कर्म का फल है। अष्टावक जी को इतना ज्ञानवान और कुरूप भगवान ने नहीं बनाया अपितु उनके माता-पिता के कर्मों के फल स्वरूप ही वह ज्ञानवान और कुरूप बने। इसी तरह माता-पिता के कर्मों का फल संतान को और संतान के कर्मों का फल माता-पिता को भोगना पड़ता है।

उपनिषदों में लिखा है, मनुष्य अपने संकल्पानुसार जैसी चाहे वैसी संतानोत्पत्ति कर सकता है। यदि विद्वान व अच्छे पुत्र का संकल्प हो तो परमात्मा से प्रार्थना के साथ ही क्षीर और चावल धी के साथ खाना चाहिए। ऐतरेयोपनिषद में लिखा है कि पिता जो अन्न और जलादि का आहार करता है उससे वीर्य उत्पन्न होता है। जीव का वीर्य रूप में पिता के शरीर में स्थित होना प्रथम जन्म है। गर्भाधान द्वारा स्त्री के शरीर में अंगभूत होना द्वितीय जन्म है तथा माँ के गर्भ से बाहर आना तीसरा जन्म है। पिता से संतान की आकृति आती है। सूक्ष्म यंत्र द्वारा देखने पर वीर्य में पुरुष की सारी आकृति विद्यमान बताई जाती है। गर्भावस्था में स्त्री के आहार से जीव का शरीर बनता है। कितनी ही पीड़ियों तक जीव अमुक का पुत्र, पौत्र और प्रपुत्र की तरह जाना जाता है। जीव का रूप माता-पिता तथा गर्भकाल में माता के किसी और को देखने, ध्यान करने से उस पर भी जाता है। एक गर्भवती अंग्रेज महिला के कमरे में एक हब्शी का चित्र था। जिसे वह बार-बार देखती और ध्याती थी। उससे उत्पन्न बालक का रूप हब्शी जैसा ही था। यह देखकर अंग्रेजों को बड़ा आश्चर्य हुआ तथा उन्होंने हिंदुओं में प्रचलित इस धारणा को कि दृष्टि व ध्यान से रूप रंग बदल जाता है सच माना। ऐसे ही उग्रसेन की रानी की राक्षस पर निगाह पड़ने से कंस उत्पन्न हुआ।

इस कारण गर्भावस्था में स्त्री की बहुत रक्षा करनी चाहिये। वह अपने पति के चित्र को देखे या उसका ध्यान करे। अपनी तस्वीर को दर्पण में देखे। राम-कृष्ण आदि अवतारों की, देवताओं की, ऋषि, मुनि और महात्माओं की मूर्तियों का ध्यान करे। उनके जीवन चरित्रों की कथा सुने। क्षीर, चावल, दूध, फल, ब्राह्मी, वंशलोचन, ज्योतिष्मती, गिलोय, गाय का घी और शहद आदि का सेवन करे। पति को चाहिये कि कभी किसी प्रकार का शोक, क्रोध, दुःख उसे न होने दे। नीच स्त्री से बात न करने दे। एकांत एवं अच्छे स्थान पर रखे। वनों में, जंगलों में, बागों में और फूलों में लेकर जाये। साधु-महात्माओं के दर्शनों को लेकर जाये और जो भी स्त्री की इच्छा हो, उसे पूर्ण करे। कर्ज लेना बुरा है। परंतु गर्भावस्था में यदि आवश्यकता हो तो कर्ज लेकर भी अपनी स्त्री की अच्छी इच्छाएँ अवश्य पूर्ण करे। स्त्री को अच्छे व खुले मकान में रखे। इन सब बातों का ध्यान रखने से संतान अवश्य ही ज्ञानवान, धैर्यवान और पराक्रमी होगी।

गर्भ के अंदर जब अभिमन्यु था तब अर्जुन ने उसकी माता को चक्रव्यूह तोड़ने की कथा सुनाई थी। वह अभिमन्यु को सोलह वर्ष की आयु में ज्यों की त्यों याद रही।

ऐसे ही आल्हा, ऊदल तथा बोनापार्ट जब अपनी माताओं के गर्भ में थे। उस समय उनकी मातायें लड़ाइयों में सिपाहियों को पानी पिलाती थीं। युद्ध का दृश्य देखती थीं तथा सुनती थीं। इन सब बातों का ही प्रभाव था कि इन सभी ने जबसे सुरत संभाली तब से जीवन पर्यन्त युद्ध ही करते रहे।

गर्भ के समय माता जो कुछ खायेगी, देखेगी, सुनेगी और सोचेगी, वैसी ही संतान उत्पन्न होगी। इसलिये माता-पिता को चाहिये कि वे संतान के लिये अच्छा काम करें। संतान के सुख-दुःख और पाप-पुण्य का उत्तरदायित्व माता-पिता पर है। परमात्मा किसी को दीन-दुःखी और पराधीन नहीं बनाता। वह तो इनसे छूटने और छुटाने का उपदेश करता है। वह इन सबसे असंग है।

अब रही पुण्ययोनि, पापयोनि, कंगाल, भाग्यवान, राजा, रंक, ऊँच और नीच की बात। सो यह भी परमेश्वर ने नहीं बनाये और न बनाता है। यह सब यहाँ की बुरी व्यवस्था के फल हैं। परमेश्वर तो कल्याण करने वाला और मोक्ष देने वाला है।

## **ज्ञान की उदाहरणात्मक बातें**

अपने उपदेशों के समय श्री महाराज जी तरह-तरह के उदाहरण दिया करते थे। उन्हीं में से कुछ हम आपके सामने रखने का प्रयास कर रहे हैं। कृपया इन बातों को ध्यान में रखकर ही अपना जीवन जीयें। परंतु ध्यान रखें कि निषिद्ध कर्मों को इन उदाहरणों का सहारा लेकर किसी तरह भी न्यायोचित नहीं कहा जा सकता। तो आइये देखते हैं कुछ उदाहरण।

(१) जैसे बालू में बच्चों द्वारा बनायी गयी विभिन्न आकृतियों का मूल बालू ही है और इन आकृतियों के नष्ट होने से ये पुनः बालू ही हो जाती है। ऐसे ही ये पूरा दृश्य संसार ब्रह्म से उत्पन्न होकर, ब्रह्म में रहकर, ब्रह्म ही में लीन हो जाता है।

(२) जिस प्रकार सोने से बने आभूषणों का मूल सोना ही है, तथा मिटने के उपरांत ये सभी आभूषण सोना ही बन जाते हैं। ऐसे ही इस जगत के चल-अचल सभी जीव ब्रह्म से ही बने हैं, तथा समाप्त होने पर ब्रह्म ही में लीन हो जाते हैं।

(३) जिस प्रकार मिट्टी से बने बर्तन, मिट्टी से बने होने पर भी, अपने विभिन्न नामों से ही जाने जाते हैं। परंतु अंत में मिट्टी में ही लीन हो जाते हैं। इसी प्रकार इस संसार में सभी चल-अचल जीव ब्रह्म से बने होकर भी, अपने विभिन्न नामों, जातियों तथा धर्मों से ही जाने जाते हैं। परंतु अंत में ब्रह्म ही में लीन हो जाते हैं।

(४) जैसे जल ही का परिवर्तित रूप हिम, धुंध तथा हिमपात है और ये सभी पुनः जल ही में मिल जाते हैं। ऐसे ही ब्रह्म का परिवर्तित रूप यह सारा संसार है और ब्रह्म ही नानाविध जगत में व्याप्त हो रहा है। समाप्त होने पर यह संसार पुनः ब्रह्म ही में मिल जाता है।

(५) जैसे चीनी अथवा खांड से बने खिलोने (दीपावली के शुभ अवसर पर बनने वाला एक प्रकार का मिष्ठान) जिनमें हाथी, घोड़े, गाय आदि जीव-जंतु तो भ्रम मात्र ही होते हैं और अस्तित्व तो केवल चीनी का ही होता है। ऐसे ही इस दृश्य संसार में प्रतीत होने वाले सभी चल-अचल प्राणी और वस्तुएँ भ्रम मात्र ही हैं और अस्तित्व तो केवल ब्रह्म का ही है जिससे यह सारी सृष्टि उत्पन्न हुई है।

(६) जिस प्रकार गंगाजल में अथवा चांडाल के जल में प्रतिबिंबित सूर्य में कोई अंतर नहीं है। ऐसे ही भिन्न-भिन्न मनुष्यों की आत्मा में भी कोई अंतर नहीं है।

(७) जिस प्रकार सोने के घड़े में अथवा मिट्टी के घड़े में उपस्थित आकाश (हवा) में कोई अंतर नहीं है। ऐसे ही भिन्न-भिन्न मनुष्यों में उपस्थित आत्मा में भी कोई अंतर नहीं है।

(८) जिस प्रकार गंदे दर्पण से गंदगी मिट जाने से सूर्य साफ प्रतिबिंबित होता है। ऐसे ही आत्मा से अज्ञान रूपी गंदगी मिट जाने से परमात्मा साफ प्रतिबिंबित होता है।

(९) जिस प्रकार अज्ञानतावश रज्जू (रस्सी) में सर्प का अभास होता है, और उस अज्ञानता के मिट जाने से रज्जू की ही सत्ता दिखती है। ऐसे ही अज्ञानता के मिट जाने पर इस संसार में भी ब्रह्म की ही सत्ता का ज्ञान होता है।

(१०) जिस प्रकार समुद्र में उठने वाली लहरें अलग-अलग दिखती हैं, परंतु उनमें एक ही समुद्र होता है। ऐसे ही विभिन्न मनुष्य ब्रह्मरूपी समुद्र की लहरें ही हैं। तथा जैसे समुद्र में उठने वाली लहरें असत हैं, और सत तो समुद्र ही है। ऐसे ही यह संसार जो नानाविध दृष्टि गोचर हो रहा है उस ब्रह्मरूपी समुद्र की लहर ही है। इसी कारण असत है, सत तो केवल ब्रह्म ही है।

### श्री महाराज जी द्वारा आश्रम वासियों को लिखे पत्रों में वर्णित उपदेश

- १) जो अच्छी-अच्छी अपनी भलाई की उन्नति की बातें हैं उन्हीं का अमल किया करो।
- २) ऐसा कर्म करो जिससे परमात्मा प्राप्त हो।
- ३) गौओं की सेवा, वृक्षों का पालन और परमेश्वर का भजन सदैव करो।
- ४) सभी कर्म परमात्मा के अर्पण किया करो।
- ५) हिंदु, ईसाई, मुसलमान इत्यादि सब भगवान के पुत्र हैं। सबका पिता एक परमात्मा है।
- ६) सभी को भाई-भाई के नाते से देखना चाहिये। हम सब के हैं और हमारे सब हैं।
- ७) हम सब परमात्मा के अंश हैं। उसी से उत्पन्न हुए हैं और उसी में लय हो जायेंगे।
- ८) वास्तव में वह परमात्मा ही सब कुछ है। उसको नमस्कार, धन्यवाद हो, सब कुछ उसके लिये हो।
- ९) उस परमात्मा के सिवाय कोई नहीं।



- १०) जैसे मिट्टी के बर्तन, खिलौने सब मिट्टी ही है ऐसे ही हिंदू, मुसलमान, ईसाई इत्यादि सारा ब्रह्मांड उसका रूप है।
- ११) रोम-रोम से और रक्त के कण-कण से उसका धन्यवाद हो, नमस्कार हो।
- १२) सारे जगत का एक-एक परमाणु उसका धन्यवाद कर रहा है, यशोगान, प्रणाम कर रहा है।
- १३) वह परमपिता परमात्मा ही हमारा अपना आप है। उसके सिवाय न कोई भाई है न बाप है।
- १४) आप भुलाया आप में, बंध्यो आप ही आप। जाको तू ढूँढत फिरे सो तू आपै आप।।
- १५) तुम सभी की एक दिन मुक्ति हो जायेगी, ज्ञान हो जायेगा। तब बहुतायत में एकता दीखने लग जायेगी।
- १६) जैसे शीशे में मुख दीखे है, ऐसे ही सब में अपना आपा दीखने लग जायेगा।
- १७) दूसरे को पानी पिलाते समय संकल्प करें कि इस पानी को जो पिये उसके रोम-रोम में भगवान की भक्ति हो।
- १८) ऐसे ही भोजन पवित्र संकल्प कर, भगवान का नाम लेकर बनायें और खिलायें तो मनुष्यों को बहुत लाभ हो।
- १९) इसी प्रकार बीज बोते समय शिव संकल्प करें।
- २०) संतान उत्पन्न करने वाला गर्भाधान के समय “हमारे एक भगवान का भक्त हो” ऐसा संकल्प करे।
- २१) सर्व कर्म, चेष्टायें और जो करो, सब भगवान को अर्पण करो। भगवान के लिये जीओ और उसी के लिये मरो।
- २२) वह परम पिता परमात्मा क्षमाशील और दयालु है। तुमको भी क्षमाशील और दयालु बनना चाहिये।
- २३) जो तुम अपने लिये चाहो वैसा ही दूसरों के लिये करो। सब अपने ही रूप हैं।
- २४) तुम दूसरों को प्यार से प्रणाम करोगे तो वे भी तुमको प्यार से प्रणाम करेंगे।
- २५) कुँए जैसी आवाज है। जैसी आवाज कुँए में लगाओगे, वैसी ही आवाज कुँए से आयेगी।
- २६) तुम सबको जी कहकर बोलोगे, तो दूसरे भी तुम्हें जी कहकर बोलेंगे।
- २७) तुम दूसरों की रक्षा करो तो दूसरे तुम्हारी रक्षा करेंगे। जब तुम दूसरों को दुःख दोगे तो दूसरे भी ऐसा ही करेंगे।

२८) देश के पुजारियों ने शूद्रों को दुःख दिया, वे बदले की भावना ले गजनी में जन्मे व यहाँ पुजारियों को दुःख दिया।

२९) इसीलिये कहा गया है कि अपना कर्म ही अपने लिये सुख-दुःख का कारण है।

३०) इसी लिये सभी के साथ प्रेम वर्तना चाहिये। प्रेम भगवान का स्वरूप है। प्रेम परमेश्वर के मिलने का साधन है।

३१) तुम्हारे सद्-विचार न केवल वाणी से अपितु कर्मों से भी प्रकट हों।

३२) एक भरोसा एक बल, एक आस विश्वास। परमेश्वर प्रति क्षण आपके रक्षक और सहायक हैं।

३३) तुम भगवान को एक पल ध्याओ तो वे तुम्हारा पलों तक ध्यान रखेंगे। जैसे कृष्ण ने युद्ध में भीष्म को ध्याया।

३४) हृदयाकाश रूपी सिंहासन पर विराजमान परमात्मा को जीवन रूपी पुष्प समर्पित कर उनको पूजो।

३५) सदैव अपने पवित्र आचरण से अपने कुटुम्ब, ग्राम और अपनी जाति को संसार में प्रसिद्ध करो।

३६) अपने माता-पिता की आज्ञा और सेवा में परमात्मा है ऐसा समझो।

३७) जो धर्म धारण किया हुआ है उस पर दृढ़ रहो। धर्म कभी न छोड़ो।

३८) प्राण भले जायें परंतु अपने कुल का नाम उज्वल करो।

३९) प्रेम सर्व शक्तिमान है, ये कभी व्यर्थ नहीं। तुम्हारे अंदर प्रेम प्रकट होने पर तुम्हारी शक्ति कोई रोक नहीं सकता।

४०) कहन सुनन की है नहीं लिखी पढ़ी नहीं जात, अपने जी ते जानियो मेरे जी की बात।।

**बोलो प्रेम से सच्चिदानंद सनातन ब्रह्म की जय।**